16

यतींद्र मिश्र

यतींद्र मिश्र का जन्म सन् 1977 में अयोध्या (उत्तर प्रदेश) में हुआ। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ से हिंदी में एम.ए. किया। वे आजकल स्वतंत्र लेखन के साथ अर्द्धवार्षिक **सहित** पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। सन् 1999 में साहित्य और कलाओं के संवर्द्धन और अनुशीलन के लिए एक सांस्कृतिक न्यास 'विमला देवी फाउंडेशन' का संचालन भी कर रहे हैं।

यतींद्र मिश्र के तीन काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं–**यदा-कदा, अयोध्या तथा अन्य कविताएँ**, **ड्योढ़ी पर आलाप**। इसके अलावा शास्त्रीय गायिका गिरिजा देवी के जीवन और संगीत साधना पर एक पुस्तक **गिरिजा** लिखी। रीतिकाल के अंतिम प्रतिनिधि कवि द्विजदेव की ग्रंथावली (2000) का सह-संपादन किया। कुँवर नारायण पर केंद्रित दो पुस्तकों के अलावा स्पिक मैके के लिए विरासत-2001 के कार्यक्रम के लिए रूपंकर कलाओं पर केंद्रित **थाती** का संपादन भी किया। युवा रचनाकार यतींद्र मिश्र को भारत भूषण अग्रवाल कविता सम्मान, हेमंत स्मृति कविता पुरस्कार, ऋतुराज सम्मान आदि कई पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। कविता, संगीत व अन्य ललित कलाओं के साथ-साथ समाज और संस्कृति के विविध क्षेत्रों में भी उनकी गहरी रुचि है।

नौबतखाने में इबादत *प्रसिद्ध शहनाई वादक उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ पर रोचक शैली में लिखा गया व्यक्ति-चित्र है। यतींद्र मिश्र ने बिस्मिल्ला खाँ का परिचय तो दिया ही है, साथ ही उनकी रुचियों, उनके अंतर्मन की बुनावट, संगीत की साधना और लगन को संवेदनशील भाषा में व्यक्त किया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया गया है कि संगीत एक आराधना है। इसका विधि-विधान है। इसका शास्त्र है, इस शास्त्र से परिचय आवश्यक है, सिर्फ़ परिचय ही नहीं उसका अभ्यास ज़रूरी है और अभ्यास के लिए गुरु-शिष्य परंपरा ज़रूरी है, पूर्ण तन्मयता ज़रूरी है, धैर्य ज़रूरी है, मंथन ज़रूरी है। वह लगन और धैर्य बिस्मिल्ला खाँ में रहा है। तभी 80 वर्ष की उम्र में भी उनकी साधना चलती रही है। यतींद्र मिश्र संगीत की शास्त्रीय परंपरा के गहरे जानकार हैं, इस पाठ में इसकी कई अनुगूँजें हैं जो पाठ को बार-बार पढ़ने के लिए आमंत्रित करती हैं। भाषा सहज, प्रवाहमयी तथा प्रसंगों और संदर्भों से भरी हुई है।*

नौबतखाने में इबादत

सन् 1916 से 1922 के आसपास की काशी। पंचगंगा घाट स्थित बालाजी मंदिर की ड्योढ़ी। ड्योढ़ी का नौबतखाना और नौबतखाने से निकलने वाली मंगलध्वनि।

अमीरुद्दीन अभी सिर्फ़ छः साल का है और बड़ा भाई शम्सुद्दीन नौ साल का। अमीरुद्दीन को पता नहीं है कि राग किस चिड़िया को कहते हैं। और ये लोग हैं मामूजान वगैरह जो बात-बात पर भीमपलासी और मुलतानी कहते रहते हैं। क्या वाज़िब मतलब हो सकता है इन शब्दों का, इस लिहाज से अभी उम्र नहीं है अमीरुद्दीन की, जान सके इन भारी शब्दों का वजन कितना होगा। गोया, इतना ज़रूर है कि अमीरुद्दीन व शम्सुद्दीन के मामाद्वय सादिक हुसैन तथा अलीबख्श देश के जाने-माने शहनाई वादक हैं। विभिन्न रियासतों के दरबार में बजाने जाते रहते हैं। रोज़नामचे में बालाजी का मंदिर सबसे ऊपर आता है। हर दिन की शुरुआत वहीं ड्योढ़ी पर होती है। मंदिर के विग्रहों को पता नहीं कितनी समझ है, जो रोज़ बदल-बदलकर मुलतानी, कल्याण, ललित और कभी भैरव रागों को सुनते रहते हैं। ये खानदानी पेशा है अलीबख्श के घर का। उनके अब्बाजान भी यहीं ड्योढ़ी पर शहनाई बजाते रहते हैं।

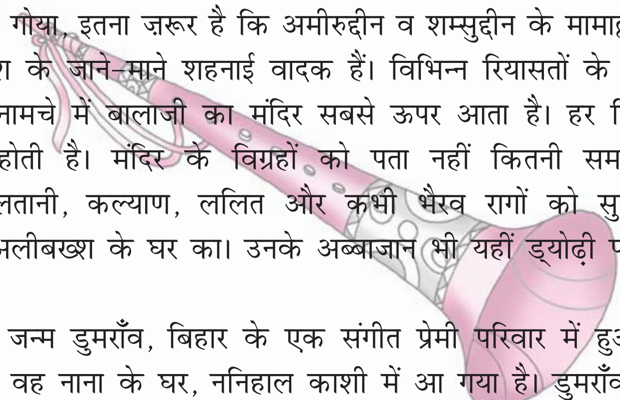

अमीरुद्दीन का जन्म डुमराँव, बिहार के एक संगीत प्रेमी परिवार में हुआ है। 5-6 वर्ष डुमराँव में बिताकर वह नाना के घर, ननिहाल काशी में आ गया है। डुमराँव का इतिहास में कोई स्थान बनता हो, ऐसा नहीं लगा कभी भी। पर यह ज़रूर है कि शहनाई और डुमराँव एक-दूसरे के लिए उपयोगी हैं। शहनाई बजाने के लिए रीड का प्रयोग होता है। रीड अंदर से पोली होती है जिसके सहारे शहनाई को फूँका जाता है। रीड, नरकट (एक प्रकार की घास) से बनाई जाती है जो डुमराँव में मुख्यतः सोन नदी के किनारों पर पाई जाती है। इतनी ही महत्ता है इस समय डुमराँव की जिसके कारण शहनाई जैसा वाद्य बजता है। फिर अमीरुद्दीन जो हम सबके प्रिय हैं, अपने उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ साहब हैं। उनका जन्म-स्थान भी डुमराँव ही है। इनके परदादा उस्ताद सलार हुसैन खाँ डुमराँव निवासी थे। बिस्मिल्ला खाँ उस्ताद पैगंबरबख्श खाँ और मिट्ठन के छोटे साहबजादे हैं।

अमीरुद्दीन की उम्र अभी 14 साल है। मसलन बिस्मिल्ला खाँ की उम्र अभी 14 साल है। वही काशी है। वही पुराना बालाजी का मंदिर जहाँ बिस्मिल्ला खाँ को नौबतखाने रियाज़ के लिए जाना पड़ता है। मगर एक रास्ता है बालाजी मंदिर तक जाने का। यह रास्ता रसूलनबाई और बतूलनबाई के यहाँ से होकर जाता है। इस रास्ते से अमीरुद्दीन को जाना अच्छा लगता है। इस रास्ते न जाने कितने तरह के बोल-बनाव कभी ठुमरी, कभी टप्पे, कभी दादरा के मार्फत ड्योढ़ी तक पहुँचते रहते हैं। रसूलन और बतूलन जब गाती हैं तब अमीरुद्दीन को खुशी मिलती है। अपने ढेरों साक्षात्कारों में बिस्मिल्ला खाँ साहब ने स्वीकार किया है कि उन्हें अपने जीवन के आरंभिक दिनों में संगीत के प्रति आसक्ति इन्हीं गायिका बहिनों को सुनकर मिली है। एक प्रकार से उनकी अबोध उम्र में अनुभव की स्लेट पर संगीत प्रेरणा की वर्णमाला रसूलनबाई और बतूलनबाई ने उकेरी है।

वैदिक इतिहास में शहनाई का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसे संगीत शास्त्रांतर्गत 'सुषिर-वाद्यों' में गिना जाता है। अरब देश में फूँककर बजाए जाने वाले वाद्य जिसमें नाड़ी (नरकट या रीड) होती है, को 'नय' बोलते हैं। शहनाई को 'शाहेनय' अर्थात् 'सुषिर वाद्यों में शाह' की उपाधि दी गई है। सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तानसेन के द्वारा रची बंदिश, जो संगीत राग कल्पद्रुम से प्राप्त होती है, में शहनाई, मुरली, वंशी, शृंगी एवं मुरछंग आदि का वर्णन आया है।

अवधी पारंपरिक लोकगीतों एवं चैती में शहनाई का उल्लेख बार-बार मिलता है। मंगल का परिवेश प्रतिष्ठित करने वाला यह वाद्य इन जगहों पर मांगलिक विधि-विधानों के अवसर पर ही प्रयुक्त हुआ है। दक्षिण भारत के मंगल वाद्य 'नागस्वरम्' की तरह शहनाई, प्रभाती की मंगलध्वनि का संपूरक है।

शहनाई के इसी मंगलध्वनि के नायक बिस्मिल्ला खाँ साहब अस्सी बरस से सुर माँग रहे हैं। सच्चे सुर की नेमत। अस्सी बरस की पाँचों वक्त वाली नमाज़ इसी सुर को पाने की प्रार्थना में खर्च हो जाती है। लाखों सज़दे, इसी एक सच्चे सुर की इबादत में खुदा के आगे झुकते हैं। वे नमाज़ के बाद सज़दे में गिड़गिड़ाते हैं–'मेरे मालिक एक सुर बख्श दे। सुर में वह तासीर पैदा कर कि आँखों से सच्चे मोती की तरह अनगढ़ आँसू निकल आएँ।' उनको यकीन है, कभी खुदा यूँ ही उन पर मेहरबान होगा और अपनी झोली से सुर का फल निकालकर उनकी ओर उछालेगा, फिर कहेगा, ले जा अमीरुद्दीन इसको खा ले और कर ले अपनी मुराद पूरी।

अपने ऊहापोहों से बचने के लिए हम स्वयं किसी शरण, किसी गुफ़ा को खोजते हैं जहाँ अपनी दुश्चिंताओं, दुर्बलताओं को छोड़ सकें और वहाँ से फिर अपने लिए एक नया तिलिस्म गढ़ सकें। हिरन अपनी ही महक से परेशान पूरे जंगल में उस वरदान को खोजता है जिसकी

गमक उसी में समाई है। अस्सी बरस से बिस्मिल्ला खाँ यही सोचते आए हैं कि सातों सुरों को बरतने की तमीज़ उन्हें सलीके से अभी तक क्यों नहीं आई।

बिस्मिल्ला खाँ और शहनाई के साथ जिस एक मुस्लिम पर्व का नाम जुड़ा हुआ है, वह मुहर्रम है। मुहर्रम का महीना वह होता है जिसमें शिया मुसलमान हज़रत इमाम हुसैन एवं उनके कुछ वंशजों के प्रति अज़ादारी (शोक मनाना) मनाते हैं। पूरे दस दिनों का शोक। वे बताते हैं कि उनके खानदान का कोई व्यक्ति मुहर्रम के दिनों में न तो शहनाई बजाता है, न ही किसी संगीत के कार्यक्रम में शिरकत ही करता है। आठवीं तारीख उनके लिए खास महत्त्व की है। इस दिन खाँ साहब खड़े होकर शहनाई बजाते हैं व दालमंडी में फातमान के करीब आठ किलोमीटर की दूरी तक पैदल रोते हुए, नौहा बजाते जाते हैं। इस दिन कोई राग नहीं बजता। राग-रागिनियों की अदायगी का निषेध है इस दिन।

उनकी आँखें इमाम हुसैन और उनके परिवार के लोगों की शहादत में नम रहती हैं। अज़ादारी होती है। हज़ारों आँखें नम। हज़ार बरस की परंपरा पुनर्जीवित। मुहर्रम संपन्न होता है। एक बड़े कलाकार का सहज मानवीय रूप ऐसे अवसर पर आसानी से दिख जाता है।

मुहर्रम के गमज़दा माहौल से अलग, कभी-कभी सुकून के क्षणों में वे अपनी जवानी के दिनों को याद करते हैं। वे अपने रियाज़ को कम, उन दिनों के अपने जुनून को अधिक याद करते हैं। अपने अब्बाजान और उस्ताद को कम, पक्का महाल की कुलसुम हलवाइन की कचौड़ी वाली दुकान व गीताबाली और सुलोचना को ज्यादा याद करते हैं। कैसे सुलोचना उनकी पसंदीदा हीरोइन रही थीं, बड़ी रहस्यमय मुस्कराहट के साथ गालों पर चमक आ जाती है। खाँ साहब की अनुभवी आँखें और जल्दी ही खिस्स से हँस देने की ईश्वरीय कृपा आज भी बदस्तूर कायम है।

इसी बालसुलभ हँसी में कई यादें बंद हैं। वे जब उनका ज़िक्र करते हैं तब फिर उसी नैसर्गिक आनंद में आँखें चमक उठती हैं। अमीरुद्दीन तब सिर्फ़ चार साल का रहा होगा। छुपकर नाना को शहनाई बजाते हुए सुनता था, रियाज़ के बाद जब अपनी जगह से उठकर चले जाएँ तब जाकर ढेरों छोटी-बड़ी शहनाइयों की भीड़ से अपने नाना वाली शहनाई ढूँढ़ता और एक-एक शहनाई को फेंक कर खारिज़ करता जाता, सोचता–'लगता है मीठी वाली शहनाई दादा कहीं और रखते हैं।' जब मामू अलीबख़्श खाँ (जो उस्ताद भी थे) शहनाई बजाते हुए सम पर आएँ, तब धड़ से एक पत्थर ज़मीन पर मारता था। सम पर आने की तमीज़ उन्हें बचपन में ही आ गई थी, मगर बच्चे को यह नहीं मालूम था कि दाद वाह करके दी जाती है, सिर हिलाकर दी जाती है, पत्थर पटक कर नहीं। और बचपन के समय फ़िल्मों के बुखार के बारे में तो पूछना ही क्या? उस समय थर्ड क्लास के लिए छः पैसे का टिकट मिलता था। अमीरुद्दीन दो पैसे मामू से, दो पैसे मौसी से और दो पैसे नानी से लेता था फिर घंटों लाइन में लगकर टिकट हासिल करता था।

इधर सुलोचना की नयी फ़िल्म सिनेमाहाल में आई और उधर अमीरुद्दीन अपनी कमाई लेकर चला फ़िल्म देखने जो बालाजी मंदिर पर रोज़ शहनाई बजाने से उसे मिलती थी। एक अठन्नी मेहनताना। उस पर यह शौक ज़बरदस्त कि सुलोचना की कोई नयी फ़िल्म न छूटे और कुलसुम की देशी घी वाली दुकान। वहाँ की संगीतमय कचौड़ी। संगीतमय कचौड़ी इस तरह क्योंकि कुलसुम जब कलकलाते घी में कचौड़ी डालती थी, उस समय छन्न से उठने वाली आवाज़ में उन्हें सारे आरोह-अवरोह दिख जाते थे। राम जाने, कितनों ने ऐसी कचौड़ी खाई होंगी। मगर इतना तय है कि अपने खाँ साहब रियाज़ी और स्वादी दोनों रहे हैं और इस बात में कोई शक नहीं कि दादा की मीठी शहनाई उनके हाथ लग चुकी है।

काशी में संगीत आयोजन की एक प्राचीन एवं अद्‌भुत परंपरा है। यह आयोजन पिछले कई बरसों से संकटमोचन मंदिर में होता आया है। यह मंदिर शहर के दक्षिण में लंका पर स्थित है व हनुमान जयंती के अवसर पर यहाँ पाँच दिनों तक शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय गायन-वादन की उत्कृष्ट सभा होती है। इसमें बिस्मिल्ला खाँ अवश्य रहते हैं। अपने मजहब के प्रति अत्यधिक समर्पित उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ की श्रद्धा काशी विश्वनाथ जी के प्रति भी अपार है। वे जब भी काशी से बाहर रहते हैं तब विश्वनाथ व बालाजी मंदिर की दिशा की ओर मुँह करके बैठते हैं, थोड़ी देर ही सही, मगर उसी ओर शहनाई का प्याला घुमा दिया जाता है और भीतर की आस्था रीड के माध्यम से बजती है। खाँ साहब की एक रीड 15 से 20 मिनट के अंदर गीली हो जाती है तब वे दूसरी रीड का इस्तेमाल कर लिया करते हैं।

अक्सर कहते हैं–'क्या करें मियाँ, ई काशी छोड़कर कहाँ जाएँ, गंगा मइया यहाँ, बाबा विश्वनाथ यहाँ, बालाजी का मंदिर यहाँ, यहाँ हमारे खानदान की कई पुश्तों ने शहनाई बजाई है, हमारे नाना तो वहीं बालाजी मंदिर में बड़े प्रतिष्ठित शहनाईवाज़ रह चुके हैं। अब हम क्या करें, मरते दम तक न यह शहनाई छूटेगी न काशी। जिस ज़मीन ने हमें तालीम दी, जहाँ से अदब पाई, वो कहाँ और मिलेगी? शहनाई और काशी से बढ़कर कोई जन्नत नहीं इस धरती पर हमारे लिए।'

काशी संस्कृति की पाठशाला है। शास्त्रों में आनंदकानन के नाम से प्रतिष्ठित। काशी में कलाधर हनुमान व नृत्य-विश्वनाथ हैं। काशी में बिस्मिल्ला खाँ हैं। काशी में हज़ारों सालों का इतिहास है जिसमें पंडित कंठे महाराज हैं, विद्याधरी हैं, बड़े रामदास जी हैं, मौजुद्दीन खाँ हैं व इन रसिकों से उपकृत होने वाला अपार जन-समूह है। यह एक अलग काशी है जिसकी अलग तहज़ीब है, अपनी बोली और अपने विशिष्ट लोग हैं। इनके अपने उत्सव हैं, अपना गम। अपना सेहरा-बन्ना और अपना नौहा। आप यहाँ संगीत को भक्ति से, भक्ति को किसी भी धर्म के कलाकार से, कजरी को चैती से, विश्वनाथ को विशालाक्षी से, बिस्मिल्ला खाँ को गंगाद्वार से अलग करके नहीं देख सकते।

अकसर समारोहों एवं उत्सवों में दुनिया कहती है ये बिस्मिल्ला खाँ हैं। बिस्मिल्ला खाँ का मतलब–बिस्मिल्ला खाँ की शहनाई। शहनाई का तात्पर्य-बिस्मिल्ला खाँ का हाथ। हाथ से आशय इतना भर कि बिस्मिल्ला खाँ की फूँक और शहनाई की जादुई आवाज़ का असर हमारे सिर चढ़कर बोलने लगता है। शहनाई में सरगम भरा है। खाँ साहब को ताल मालूम है, राग मालूम है। ऐसा नहीं कि बेताले जाएँगे। शहनाई में सात सुर लेकर निकल पड़े। शहनाई में परवरदिगार, गंगा मइया, उस्ताद की नसीहत लेकर उतर पड़े। दुनिया कहती–सुबहान अल्लाह, तिस पर बिस्मिल्ला खाँ कहते हैं–अलहमदुलिल्लाह। छोटी-छोटी उपज से मिलकर एक बड़ा आकार बनता है। शहनाई का करतब शुरू होने लगता है। बिस्मिल्ला खाँ का संसार सुरीला होना शुरू हुआ। फूँक में अजान की तासीर उतरती चली आई। देखते-देखते शहनाई डेढ़ सतक के साज से दो सतक का साज बन, साजों की कतार में सरताज हो गई। अमीरुद्दीन की शहनाई गूँज उठी। उस फकीर की दुआ लगी जिसने अमीरुद्दीन से कहा था–"बजा, बजा।"

किसी दिन एक शिष्या ने डरते-डरते खाँ साहब को टोका, "बाबा! आप यह क्या करते हैं, इतनी प्रतिष्ठा है आपकी। अब तो आपको भारतरत्न भी मिल चुका है, यह फटी तहमद न पहना करें। अच्छा नहीं लगता, जब भी कोई आता है आप इसी फटी तहमद में सबसे मिलते हैं।" खाँ साहब मुसकराए। लाड़ से भरकर बोले, "धत्! पगली ई भारतरत्न हमको शहनईया पे मिला है, लुंगिया पे नाहीं। तुम लोगों की तरह बनाव सिंगार देखते रहते, तो उमर ही बीत जाती, हो चुकती शहनाई।" तब क्या खाक रियाज़ हो पाता। ठीक है बिटिया, आगे से नहीं पहनेंगे, मगर

इतना बताए देते हैं कि मालिक से यही दुआ है, "फटा सुर न बख्शें। लुंगिया का क्या है, आज फटी है, तो कल सी जाएगी।"

सन् 2000 की बात है। पक्का महाल (काशी विश्वनाथ से लगा हुआ अधिकतम इलाका) से मलाई बरफ़ बेचने वाले जा चुके हैं। खाँ साहब को इसकी कमी खलती है। अब देशी घी में वह बात कहाँ और कहाँ वह कचौड़ी-जलेबी। खाँ साहब को बड़ी शिद्दत से कमी खलती है। अब संगतियों के लिए गायकों के मन में कोई आदर नहीं रहा। खाँ साहब अफसोस जताते हैं। अब घंटों रियाज़ को कौन पूछता है? हैरान हैं बिस्मिल्ला खाँ। कहाँ वह कजली, चैती और अदब का जमाना?

सचमुच हैरान करती है काशी—पक्का महाल से जैसे मलाई बरफ़ गया, संगीत, साहित्य और अदब की बहुत सारी परंपराएँ लुप्त हो गईं। एक सच्चे सुर साधक और सामाजिक की भाँति बिस्मिल्ला खाँ साहब को इन सबकी कमी खलती है। काशी में जिस तरह बाबा विश्वनाथ और बिस्मिला खाँ एक-दूसरे के पूरक रहे हैं, उसी तरह मुहर्रम-ताजिया और होली-अबीर, गुलाल की गंगा-जमुनी संस्कृति भी एक दूसरे के पूरक रहे हैं। अभी जल्दी ही बहुत कुछ इतिहास बन चुका है। अभी आगे बहुत कुछ इतिहास बन जाएगा। फिर भी कुछ बचा है जो सिर्फ़ काशी में है। काशी आज भी संगीत के स्वर पर जगती और उसी की थापों पर सोती है। काशी में मरण भी मंगल माना गया है। काशी आनंदकानन है। सबसे बड़ी बात है कि काशी के पास उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ जैसा लय और सुर की तमीज सिखाने वाला नायाब हीरा रहा है जो हमेशा से दो कौमों को एक होने व आपस में भाईचारे के साथ रहने की प्रेरणा देता रहा।

भारतरत्न से लेकर इस देश के ढेरों विश्वविद्यालयों की मानद उपाधियों से अलंकृत व संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार एवं पद्मविभूषण जैसे सम्मानों से नहीं, बल्कि अपनी अजेय संगीतयात्रा के लिए बिस्मिल्ला खाँ साहब भविष्य में हमेशा संगीत के नायक बने रहेंगे। नब्बे वर्ष की भरी-पूरी आयु में 21 अगस्त 2006 को संगीत रसिकों की हार्दिक सभा से विदा हुए खाँ साहब की सबसे बड़ी देन हमें यही है कि पूरे अस्सी बरस उन्होंने संगीत को संपूर्णता व एकाधिकार से सीखने की जिजीविषा को अपने भीतर जिंदा रखा।

प्रश्न-अभ्यास

1. शहनाई की दुनिया में डुमराँव को क्यों याद किया जाता है?
2. बिस्मिल्ला खाँ को शहनाई की मंगलध्वनि का नायक क्यों कहा गया है?
3. सुषिर-वाद्यों से क्या अभिप्राय है? शहनाई को 'सुषिर वाद्यों में शाह' की उपाधि क्यों दी गई होगी?
4. आशय स्पष्ट कीजिए–
   (क) 'फटा सुर न बख्शें। लुंगिया का क्या है, आज फटी है, तो कल सी जाएगी।'
   (ख) 'मेरे मालिक सुर बख्श दे। सुर में वह तासीर पैदा कर कि आँखों से सच्चे मोती की तरह अनगढ़ आँसू निकल आएँ।'
5. काशी में हो रहे कौन-से परिवर्तन बिस्मिल्ला खाँ को व्यथित करते थे?
6. पाठ में आए किन प्रसंगों के आधार पर आप कह सकते हैं कि–
   (क) बिस्मिल्ला खाँ मिली-जुली संस्कृति के प्रतीक थे।
   (ख) वे वास्तविक अर्थों में एक सच्चे इनसान थे।

7. बिस्मिल्ला खाँ के जीवन से जुड़ी उन घटनाओं और व्यक्तियों का उल्लेख करें जिन्होंने उनकी संगीत साधना को समृद्ध किया?

रचना और अभिव्यक्ति

8. बिस्मिल्ला खाँ के व्यक्तित्व की कौन-कौन सी विशेषताओं ने आपको प्रभावित किया?
9. मुहर्रम से बिस्मिल्ला खाँ के जुड़ाव को अपने शब्दों में लिखिए।
10. बिस्मिल्ला खाँ कला के अनन्य उपासक थे, तर्क सहित उत्तर दीजिए।

भाषा-अध्ययन

11. निम्नलिखित मिश्र वाक्यों के उपवाक्य छाँटकर भेद भी लिखिए–
   (क) यह ज़रूर है कि शहनाई और डुमराँव एक-दूसरे के लिए उपयोगी हैं।
   (ख) रीड अंदर से पोली होती है जिसके सहारे शहनाई को फूँका जाता है।
   (ग) रीड नरकट से बनाई जाती है जो डुमराँव में मुख्यत: सोन नदी के किनारों पर पाई जाती है।
   (घ) उनको यकीन है, कभी खुदा यूँ ही उन पर मेहरबान होगा।

(ङ) हिरन अपनी ही महक से परेशान पूरे जंगल में उस वरदान को खोजता है जिसकी गमक उसी में समाई है।

(च) खाँ साहब की सबसे बड़ी देन हमें यही है कि पूरे अस्सी बरस उन्होंने संगीत को संपूर्णता व एकाधिकार से सीखने की जिजीविषा को अपने भीतर जिंदा रखा।

12. निम्नलिखित वाक्यों को मिश्रित वाक्यों में बदलिए–

(क) इसी बालसुलभ हँसी में कई यादें बंद हैं।

(ख) काशी में संगीत आयोजन की एक प्राचीन एवं अद्भुत परंपरा है।

(ग) धत्! पगली ई भारतरत्न हमको शहनईया पे मिला है, लुंगिया पे नाहीं।

(घ) काशी का नायाब हीरा हमेशा से दो कौमों को एक होकर आपस में भाईचारे के साथ रहने की प्रेरणा देता रहा।

पाठेतर सक्रियता

- कल्पना कीजिए कि आपके विद्यालय में किसी प्रसिद्ध संगीतकार के शहनाई वादन का कार्यक्रम आयोजित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम की सूचना देते हुए बुलेटिन बोर्ड के लिए नोटिस बनाइए।
- आप अपने मनपसंद संगीतकार के बारे में एक अनुच्छेद लिखिए।
- हमारे साहित्य, कला, संगीत और नृत्य को समृद्ध करने में काशी (आज के वाराणसी) के योगदान पर चर्चा कीजिए।
- काशी का नाम आते ही हमारी आँखों के सामने काशी की बहुत-सी चीज़ें उभरने लगती हैं, वे कौन-कौन सी हैं?

शब्द-संपदा

ड्योढ़ी	–	दहलीज़
नौबतखाना	–	प्रवेश द्वार के ऊपर मंगल ध्वनि बजाने का स्थान
रियाज़	–	अभ्यास
मार्फ़त	–	द्वारा
श्रृंगी	–	सींग का बना वाद्ययंत्र
मुरछंग	–	एक प्रकार का लोक वाद्ययंत्र
नेमत	–	ईश्वर की देन, सुख, धन दौलत
सज़दा	–	माथा टेकना
इबादत	–	उपासना
तासीर	–	गुण, प्रभाव, असर
श्रुति	–	शब्दध्वनि
ऊहापोह	–	उलझन, अनिश्चितता

तिलिस्म	–	जादू
गमक	–	खुशबू, सुगंध
अज़ादारी	–	मातम करना, दुख मनाना
बदस्तूर	–	कायदे से, तरीके से
नैसर्गिक	–	स्वाभाविक, प्राकृतिक
दाद	–	शाबासी
तालीम	–	शिक्षा
अदब	–	कायदा, साहित्य
अलहमदुलिल्लाह	–	तमाम तारीफ़ ईश्वर के लिए
जिजीविषा	–	जीने की इच्छा
शिरकत	–	शामिल होना

यह भी जानें

सम – ताल का एक अंग, संगीत में वह स्थान जहाँ लय की समाप्ति और ताल का आरंभ होता है।

श्रुति – एक स्वर से दूसरे स्वर पर जाते समय का अत्यंत सूक्ष्म स्वरांश

वाद्ययंत्र – हमारे देश में वाद्य यंत्रों की मुख्य चार श्रेणियाँ मानी जाती हैं–

तत-वितत – तार वाले वाद्य–वीणा, सितार, सारंगी, सरोद

सुषिर – फूँक कर बजाए जाने वाले वाद्य–बाँसुरी, शहनाई, नागस्वरम्, बीन

घनवाद्य – आघात से बजाए जाने वाले धातु वाद्य–झाँझ, मंजीरा, घुँघरू

अवनद्ध – चमड़े से मढ़े वाद्य–तबला, ढोलक, मृदंग आदि।

चैती

चढ़ल चइत चित लागे ना रामा
बाबा के भवनवा
बीर बमनवा सगुन बिचारो
कब होइहैं पिया से मिलनवा हो रामा
चढ़ल चइत चित लागे ना रामा

ठुमरी

बाजुबंद खुल-खुल जाए
जादू की पुड़िया भर-भर मारी
हे! बाजुबंद खुल-खुल जाए

टप्पा

बागाँ विच आया करो
बागाँ विच आया करो
मक्खियाँ तों डर लगदा
गुड़ ज़रा कम खाया करो।

दादरा

तड़प तड़प जिया जाए
साँवरिया बिना
गोकुल छाड़े मथुरा में छाए
किन संग प्रीत लगाए
तड़प तड़प जिया जाए